भारत का लोकसंगीत और उसकी आत्मा

प्रियंका चौहान
शोधार्थी
आर.जी.पी.जी. कॉलेज,मेरठ

सारांश–

लोक संगीत अपने व्यापक अर्थ में सम्पूर्ण मानव जाति पर चरितार्थ होते हुए भी सामान्यता ग्रामीण जनता की भावना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। लोक संगीत के प्रमुख तत्व स्वर, भाषा, लय तथा ताल है।

भावों की प्रबलता, जीवन के प्रति आकर्षण, भावात्मक भावों की अभिव्यक्ति, प्रेम विरह, हर्ष एवं विषाद आदि की अभिव्यक्ति के रूप में लोग गीतों की भाषा, पारस्परिक प्रेम, सद्भावना को व्यक्त करती है। मानव–भावना ही लोक–गीत के रूप में परंपरा से प्रवाहित होती आ रही है। अतः लोक–गीत ही सर्वव्यापी है और सही मायने में धरती का संगीत है। लोक–गीतों का विषय पर्व, उत्सव, त्योहार इत्यादि सभी कुछ है।

मुख्य भाब्द– मानव, लोक–धुन, संगीत, समाज, कला

प्रस्तावना–

संगीत विकास से ही किसी दे ा की संस्कृति का धरातल सिद्ध होता है। डनेपब पे ं संदहनंहम व िवनसण इसीलिए दे ा–विदे ाों के सांस्कृति प्रतिनिधि मंडलों में संगीतकारों का समावेश प्रमुख रूप से किया जाता है। जैसे भौतिक क्षेत्र में संगीत मनुष्य को उपयोगी सिद्ध हुआ है, उसी प्रकार परलोकिक क्षेत्र में भी यह पथ–प्रदर्शक सिद्ध होता है। इस प्रकार मानसिक, भाारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में संगीत मनुष्य का सहयोगी बनकर रहा है। लोकसंगीत में नौ रसों का सुंदर और हृदयाकर्शक चित्रण मिलता है।

प्राकृतिक नियमों के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपनी अनुभूतियों को किसी–न–किसी रूप में सदा से अभिव्यक्त करता आया है। संगीत मानव मन की अभिव्यंजनामधुर कर देता है।

भाव और अन्तःकरण का सम्बन्ध अपूर्व है। भावपूर्ण रचना सहज ही मन को आकृष्ट कर लेती है। लोक संगीत विभिन्न स्थानों और विभिन्न संघिक कार्यों में, जैसे कवायत, सैनिकों का आगे कूच तथा अन्य भाारीरिक परिश्रम की क्रियाओं में परिश्रम का बोझ हल्का करने के लिए प्रायः संगीत का उपयोग किया जाता है। संगीतमय वातावरण में बड़े से बड़े बोझ श्रमिक आसानी से उठा लेते हैं सैनिक मीलों आगे बढ़ जाते हैं। वृन्द वादन की लयमय पा र्वभूमि में सर्कस में झूलों का काम बहुत सफाई से किया जाता है। अक्सर देखा जाता है कि बैलगाड़ी से दीर्घ प्रवास करने वाले पर्यटक, बैलों के गले में घुंघरू बाँध देते हैं, जिससे लम्बा सफर भी कष्टप्रद ना हो और तो और किसी सभा का आरंभ या स्वागत प्रार्थना गीत से किया जाता है।

प्राचीनकाल से ही मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहने के कारण उसकी हर क्रिया प्राकृतिक थी, वह प्रत्येक परिस्थिति में प्रकृति को ही देखा करता था। वही प्रभाव उसके संगीत पर भी था। उस समय के संगीत में स्वाभिकता अधिक थी और अलंकारिता कम। धीरे–धीरे मानव प्रकृति पर विजय पाने लगा और प्रकृति के आश्रय में उतना नहीं रहा, जितना पहले था, अतः उसकी प्रकृति के साथ घनिष्टता कम होने लगी।

भारतवासियों का जीवन सदा संगीतमय रहा है। शायद ही कोई ऐसी प्रजाति होगी, जिसके जीवन पर संगीत का प्रचूर प्रभाव न पड़ा हो। भारत का संगीत एक ओर प्रकृति और दूसरी ओर अध्यात्म दोनों पर आधारित है। भारतीय संगीत के लिए ऐसा भी कहा जाता है कि साहित्य से ब्रह्म का ज्ञान और संगीत से ब्रह्मा की प्राप्ति होती है। सदा यहाँ भिन्न–भिन्न पर्वों और अवसरों पर गायन, वादन व नर्तन की प्रथा रही है।

भारतीय लोक संगीत के बारे में विचार करते समय सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना चाहिए कि लोक संगीत के गायन वादन की प्रणाली प्राचीन या सर्वप्राचीन, अन्य दे ाों की भाँति ही है या भिन्न है।

यूरोप भारतवर्ष तथा अन्य कुछ दे ाों को छोड़कर अन्य सभी देशों में करीब–करीब लोक संगीत के ही गायन प्रथा है। भाास्त्रीय संगीत के नाम से वहाँ उनकी अपनी गायन की कोई प्रणाली ही नहीं है।

भारतीय लोक संगीत का जो रूप आज पाया जाता है, वह इतना ही पुराना होगा, जितनी पुरानी हमारी आजकल की बोलचाल की भाषा। पाली के जो गीत मिलते हैं, उनको संगीत किस प्रकार का रहा होगा, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

हमारे देश में लोकधुनों का इतना भंडार है कि कभी–कभी हम उसे सुनकर चकित रह जाते हैं। हर एक प्रान्त के लोकगीत अलग–अलग हैं। जिन्हें भिन्न–भिन्न अवसरों पर गाया जाता है। भाब्दों के साथ धुनें

भी वर्षों से एक साँचे में ढली हुई चली आ रही है।

पण्डित रवि ांकर के अनुसार "हम इन लोक धुनों को अलग–अलग क्रमबद्ध कर सकते हैं। भटियाली धुन सुनकर जैसे नावों का विचार आ जाता है, वैसे ही उत्तर–प्रदे ा की सावनी, कजरी, पंजाब का माहिया, महाराष्ट्र का पावाडा, लावनी इत्यादि सुनकर मन में वि ोष प्रकार के भाव जाग्रत होते हैं।"

वि व में लोक धुन का मेल है, योग है। वे एक–दूसरे से मिलती–जुलती हैं। मक्सिकन धुन सुनने पर तमिलनाडु के लोक–गीतों की याद आ जाती है। जोर्जियन हमारी महाराष्ट्र की लोकधुनों से मिलती–जुलती है। केवल रीति, धर्म और चलन में फर्क होता है।

भाास्त्रीय संगीत और लोक संगीत को प्राचीन काल में मार्गी संगीत और दे ाी संगीत कहा जाता था। बाद में जब इनके रूप दरबारों में प्रयुक्त हुए तो उसे 'दरबारी संगीत' कहा गया, मंदिरों में प्रयुक्त होने पर 'हवेली संगीत' समाज में प्रचलित होनेपर 'समाज संगीत' और फिल्मों में प्रयुक्त होने पर 'फिल्मी संगीत' कहा गया।

लोक संगीत सामूहिक होता है और समूहगान की रचना में सरलता और स्वाभाविकता होना सम्भव है। सरलता और स्वाभाविकता के कारण ही लोकसंगीत में प्र िाक्षण की आव यकता नहीं होती क्योंकि सरलता, स्वाभाविकता, मनोरंजकता और स्वतंत्रता को किसी बाहरी बंधन से बांधा नहीं जा सकता।

स्ंगीत कला का स्थान ललित कलाओं में सर्वश्रेश्ठ माना जाता हैं। संगीत सुनने से जो आत्मिक सुख मनुश्य को होता है उसकी समानता संसार का अन्य सुख नहीं कर सकता। समाज में जितने सुख के साधन उपलब्ध है वे सब आत्मिक नहीं है अर्थात् वे कुछ काल के लिए ही होते हैं किन्तु संगीत कला के प्रद ान तथा श्रवण से मानव को जो सुख उपलब्ध होता है वह आत्मिय तक होता है। इसीलिए संगीत कला का वरिश्ठ साधक संसार के सभी सुख–साधनों को तुच्छ एवं तिरस्करत समझता है। संगीत द्वारा समाज का चारित्रिक उत्थान होता है। समाज को आर्थिक द ाा सुधारने में भी संगीत अत्यंत सहायक होता है।

कोई भी समाज बिना धर्म के टिक नहीं सकता। हमारे ऋशियों और मुनियों ने समाज को सुव्यवस्थित बनाने के लिए धर्म का उपदेश किया। इस धर्म की उपलब्धि हमें संगीत कला के द्वारा होता है। संगीत से केवल मानव जाति ही नहीं, अपितु समस्त देव, गन्धर्व और किन्नर आदि परितुश्ट होते हैं। जिस प्रकार संगीत से समाज की उन्नति होती है उसी प्रकार समाज से संगीत की उन्नति होती है। यदि समाज में अनुकूल वातावरण है तो संगीत का विकास हो सकता है। यदि समाज में प्रतिकूल वातावरण है तो संगीत का विकास कदापि सम्भव नहीं है। जिस समाज में संगीत के प्रति अधिक जन–रूचि प्राप्त नहीं होती अथवा जो समाज संगीत तथा संगीतज्ञों को सम्मान की दृश्टि से नहीं देखता उस समाज में संगीत की साधना सफल नहीं हो सकती। इसीलिए किसी भी कला के पल्लवित और पुश्पित करने के लिए सामाजिक सुव्यवस्था अत्यंत अपेक्षित है। समाज की सुव्यवस्था से ही बड़े–बड़े कलाकारों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है और एक दूसरे में प्रतियोगात्मक भावना उत्पन्न होने से संगीत कला का विकास होता है। इन दोनों दृश्टियों से संगीत और समाज में अविनाभव सम्बन्ध है। दोनों एक–दूसरे से अनुप्राणित हैं।

भाास्त्रीय संगीत का मूल आधार लोक संगीत है। जिस प्रकार साहित्य में व्याकरण के सिद्धान्त बनने से भाशा की समृद्धि हुई, उसी तरह संगीत के व्याकरण से गायन, वादन और नृत्य की कलाओं को लाभा पहुँचा तथा संगीत की विभिन्न भौलियों का जन्म हुआ। वास्तव में प्रकृति प्रदत्त लोकसंगीत का विकास और व्यवस्थित रूप ही भाास्त्रीय संगीत कहलाता है। दे ाी संगीत के विकास की पृश्ठभूमि लोकसंगीत है। जिस दे ा या जाति का संवेदन ाील मानव जिस समय अपने ह्रदय के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए उन्मुख हुआ, उसी अवसर पर स्वयंभू स्वर, लय, प्रकृत्या उसके मुख से उद्भुत हुए और उन्हीं स्वर, गीत और लय को नियमबद्ध कर उनका जो भाास्त्रीय विकास किया गया, वही दे ाी संगीत बना।

लोक–धुनों की विशेषताएँ–

- साधारणतः लोक–धुने चार–पाँच स्वरों में सीमित हैं। कदाचित धुनों में ही छः स्वर मिलते हैं, जिनकी संख्या नि चय ही बहुत कम हैं।
- लोक–धुने लयबद्ध होती हैं। लय–सूचक कोई वाद्य लोक–धुन गाते समय न बजाया जाने के कारण ऐसा भास होता है कि केवल धुनों में स्वर का महत्व है, परन्तु अधिक ध्यान दिया जाए, तो लय स्पश्ट दिखाई देती है। नृत्य के साथ जो धुनें गायी जाती हैं, उनमें लय ढोलक की संगति के कारण स्पश्ट व्यक्त होती हैं। आ चर्य की बात यह है कि लय के अनेक प्रकार लोक–धुनों में मिलते हैं। समान भाग की लय, जो कि सरल होती है, और क्लिश्ट विभाजन की लय जिसके हिस्से समान नहीं होते– ऐसे दोनों की प्रकार लोक–धुनों में पाए जाते हैं।
- एक ही धुन में अनेक गीत गाए जाते हैं किन्तु गीत के बोल भिन्न होने के कारण वि ोशतः लय में परिवर्तन होने से वे बिल्कुल एक–दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। स्वर रचना करने के प चात् ही ऐसी विभिन्न धुनें ज्ञात होती हैं।
- लोक–धुने प्रायः सरल होती हैं परन्तु किसी–किसी धुन में रागों का सम्मिश्रण से मिश्र–राग या जोड़–राग बनाए गए हैं। भैरव–बहार, सोनी–भटियार, नट–केदार, हेम–नट, नट–बिहाग आदि इसी प्रकार के रोग हैं। किन्तु लोक–धुनों में जितनी मिश्र या जोड़ धुनें मिलती हैं, वे अत्यंत ही सुंदर और सुमधुर हैं। उनका मिश्रण कलात्मक और अत्यंत स्वाभाविकता से युक्त है।

- लोक–धुनों की स्वर रचना प्रसंगानारूप भी होती है। उन स्वरों के प्रसंग के अनुरूप भाव व्यक्त होते हैं। उदाहरण स्वररूप इधर मध्य–प्रदे ा, मध्य–भारत आदि के गाँवों की ओर कहीं–कहीं बलि का आयोजन किया जाता है। उस समय जो धुन गायी जाती हैं, उसकी स्वर–रचना में वीभत्स भावों का संचार होता है। भाास्त्रोक्त संगीत में भावना को स्वरों में व्यक्त करने के लिए सम्पूर्ण ाक्ति खर्च करनी पड़ती है, परन्तु बहुत कम गायकों को भिन्न–भिन्न स्वरूप को व्यक्त करने की कला हस्त–गत हुई है।
- लोक–धुनों के स्वर समय के अनुरूप होते हैं। प्रातःकाल, मध्यान, सायंकाल और रात्रि के अनुसार स्वर–साम्य लोक–धुनों में स्वाभाविक है। भाास्त्रोक्त संगीत में यह अत्यंत महत्व का विशय समझा गया और रागों का समय–विभाजन उनके स्वरों के अनुसार किया गया है।

लोक–धुने लोक–भाशा में होती हैं, यह सभी जानते हैं। लोक–भाशाओं की वि ोशता को देखा जाए, तो सरल, सुमधुर और आडम्बरहीन होती हैं। लोक–गीतों का विशय पर्व, उत्सव, त्योहार इत्यादि सभी–कुछ है। लोक संगीत को सहज संगीत भी कहा जा सकता है, क्योंकि यह अनुकरण मात्र से ही सीखा जा सकता है। किसी भी प्रकार का भाास्त्रीयबंधन व नियम न रहने के कारण यह जनसाधारण को भी सुलभ है।

लोकगीतों का संगीत–पक्ष

जीवन और संगीत के नैसर्गिक सम्बन्ध का वास्तविक परिचय हमें लोक संगीत द्वारा मिलता है, उतना भाास्त्रीय संगीत आस नहीं। लोकगीतों को भी भाास्त्रीय गीतों की भाँति दो अंग होते हैं– कविता और धुन अथवा भाब्द और स्वर। गीत की रचना तीन प्रणालियों से हो सकती है। कुछ रचियता पहले धुन बनाकर उस पर भाब्द बिठाते हैं। कुछ रचियता पहले कविता बनाते हैं और फिर उसे संगीत देते हैं। तीसरे प्रकार के रचियता ऐसे होते हैं, जिनके हृदय से भाब्द और स्वर एक साथ निकल पड़ते हैं, अर्थात् जब वे किसी भाव वि ोश में निमग्न होते हैं, तब अंतरप्रेरणा से अपने मुख से कविता के भाब्द स्वयं गाते हुए ही निकलते हैं। उसमें भाब्द रचना और स्वर रचना एक–साथ होती है। उत्तम लोकगीत अधिकतर तीसरी प्रणाली से ही रचे गए हैं। ये लोकगीतों की एक बड़ी वि ोशता है, इसी से लोकगीतों में कविता के भाव और उसकी धुन के भाव में एक–सा म्य मिलता है, जिसके कारण वे गीत अधिक हृदयग्राही बन जाते हैं। लोक गायक मुख्यतः कवि न होकर गायक होते हैं। लोक जीवन का सुंदरतम प्रतिबिम्ब लोकसंगीत में दिखाई पड़ता है, क्योंकि लोकगीतों के भाब्दों व स्वरों के चयन में कृत्रिमता का अभाव रहता है। उनमें लोकजीवन का सीधा–सादा परिचय होता है। वे व्यक्ति के बाह्य जीवन के साथ–साथ उसके मानसिक भावों के भी परिचायक होते हैं, परन्तु उनमें सूक्ष्मता की अपेक्षा स्थूलत और स्पश्टता का अधिक महत्व होता है। लोकगीत सरल, सुंदर, स्वाभाविक, स्पश्ट, संक्षिप्त और संगीतमय होते है। लोकसंगीत लोकजीवन का सफल परिचायक है। लोकसंगीत में अकेले गाने से कही अधिक सामूहिक ढंग से गाने के महत्व का पता चलता है और उसमें स्वर की अपेक्षा लय का अधिक प्रभाव मिलता है। उत्तर–भारत में लोकसंगीत में प्रयोग होने वाले अवनद्द अथवा धनबाध्यों में से ढोलक, खंजरी, झाँझ और करताल उल्लेखनीय है।

लोकगीतों में अधिकतर कहरवा, दादरा, खेमटा और दीपचन्दी (चाचार) तालों का प्रयोग मिलता है। यद्यपि स्वरों के चढ़ाव–उतार की अधिक विविधता लोकगीतों में नहीं मिलती, किन्तु जो भी स्वर प्रयोग उनमें मिलते हैं, वे अपनी सरंलता और स्वाभाविकता के कारण हृदय को बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। लोकगीत में अधिकतर 6 भाुद्ध स्वरों और 2 विकृत स्वर (कोमल गांधार और कोमल निशाद) स्वरों का प्रयोग देखने को मिलता है अर्थात् उनके मुख्यतः बिलावल, खमाज और काफी थाटों के स्वर लगते हैं। हर प्रांत के लोकसंगीत में सरलता, स्वभाविकता और संक्षिप्ता आज भी विद्यमान है। अधिकांश लोकगीत सप्तक के पूर्वांग में भी गाए जाते हैं, केवल उन्हें प्रभाव ाली और स्पश्ट सुनायी देने योग्य बनाने के लिए ऊँचे स्वर का शड़ज मान लिया जाता है। उत्तरांग के स्वरों का प्रयोग भी अब क्रम ाः बढ़ रहा है परन्तु पूर्वांग के स्वरों की अपेक्षा उनका प्रयोग कम होता है।

लोकसंगीत में प्रेम, भक्ति, अनुराग, धर्म आदि मानव जीवन के सभी अवयवों का सन्निवे ा है। आधुनिक प्रचलित गुर्जरी, सोरठ, भोपाली, मुलतानी, कन्ड़ आदि राग अपने नाम–आख्या भेद के अनुसार तत्तजनपदों और दे ाों के लोकसंगीत का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकसंगीत के माध्यम से समस्त वि व में मानवता, आत्मीयता और एक्य की स्थापना की जाती है, क्योंकि संगीत एक ऐसा माध्यम है, जो सभी प्रकार के विभेदों से अतीत है और यही अभेद–तत्व भारतीय संगीत की आत्मा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

- रंगयात्रा– अंक–7 वर्श कमबध्रंद.1993 लोकसंगीत की वि ोशताएँ– डॉ० रीति धनकर पेज संख्या– 21, 22
- जन–जीवन में लोक–संगीत पत्रिका वबज.1986पेज संख्या– 20–23
- संगीत निबन्ध माला– पं० जगदी ा नारायण पाठक, मानव जीवन में संगीत, पंज संख्या– 11–13, लोक संगीत की प्रेरणा– 132–134
- निबन्ध संगीत–लक्ष्मी नारायण गर्ग, भाास्त्रीय एवं लोक संगीत पर एक तुलनात्मक दृश्टि पेज संख्या– 86–90